भारतीय संस्कृति में गीता का जीवन दर्शन

मोन्टी कुमार NET M.A (आचार्य)

जगदगुरू रामानन्दाचार्य
संस्कृत विश्वविद्यालय, जयपुर

यद्यपि गीता प्राचीन उपनिषदों की संख्या में शामिल नही है। यह बात सत्य है। कि उपनिषद् भारतीय दार्शनिक चिन्तन का नवनीत हैं इसलिए उपनिषदों की श्रृंखला में अन्तिम और सर्वाधिक महत्वहपूर्ण ग्रन्थ के रूप में गीता के बारे में यहाँ चर्चा की जा रही है।

वेदो के तार्किक और वैज्ञानिक चिन्तन तथा कर्मकाण्ड के व्यावहारिक युग के बाद आध्यात्मिक चिन्तन के युग का सूत्रपात उपनिषदों से हुआ जिसने बताया कि सारे सृष्टि प्रपंच और दृश्य जगत् के पीछे एक आध्यात्मिक रहस्यमय सत्ता है । और वही चरम सत्य है । उपनिषदों ने उसे ब्रह्म की का नाम दिया वेदो के कर्मवाद के बाद उपनिषदों का यह ज्ञानवाद विश्व में इतना विख्यात हुआ कि चारे चिन्तक जगत में भ्रम की धूम मच गई। वेदो से भी अधिक वेदान्त के अध्यात्म का प्रभाव विश्व पर पडा उस समय वेदों और वेदान्तों के चिनतन और जीवनदर्श्धन की अनेक धाराएं थी, जिसके अनुसार अनेक दार्शनिक शाखाएं चल रही थी। इन सबका सार समन्वय आवश्यक लग रहा था । उस समय ऐसे जीवनदर्शन की अवधारणा आवश्यक थी । जो व्यवहारिक रूप से सबके लिए अनुसरणीय हो। इसी जीवन दर्शन को द्वपायन कृष्ण अपने पुराण महाभारत के भीष्म पर्व में कौरव पाण्डव युद्ध के पूर्व कहलवाया । उन दिनों उपनिषदों और ब्रह्म का जो महत्व था उसे देखते हुए इसे भी प्रत्येक अध्याय के अन्त में **"भगवद् गीतासु उपनिषत्सु ब्रह्म विधायाम् योगशास्त्रे"** कहा गया है। अर्थात कृष्ण ने सारी उपनिषदों और ब्रह्म विद्या का सार योगशास्त्र के रूप में कह दिया हैं समस्त चिन्तन पद्धतियों का जिनमें कर्म– मार्ग, ज्ञान मार्ग, और भक्ति मार्ग तीनो आ जाते है। समन्वय ही कृष्ण का योगशास्त्र हैं 'समत्वं योग उच्यते'

सारी उपनिषदों का सार गीता में समाहित है यह बात बहुत सरल रूप में किसी ने एक श्लोक में बता दी –

सर्वोपनिषदों गावो दोग्धा गोपालनन्दनः

पार्थो वत्सः सुधीर्भोक्ता दुग्धं गीतामृतं महत् ।।[1]।।

(श्रीमद्भगवदगीता)

सारी उपनिषदें गायें है। उनका दूध कृष्ण ने दुह लिया बहुत समय तक गाय चराने गोपाल से अचछा दुहने वाला भला और कौन हो सकता था? उन्होंने पहला दूध बछडे (अर्जुन) को पिलाया और बाद के दूध से सारे ज्ञानी लाभान्वित हो रहे है। कृष्ण इसलिए जगद गुरू हैं **"कृष्णं वन्दे जगदगुरूम्"** उन्होंने कोई नया पंथ नही चलाया सारे पंथो का समन्वय यकरके रख दिया । इसलिए गीता एक ऐसा समुद्र है। कि जिसमें जो कोई जो चाहता है। पा लेता है। इसमें से भक्ति के आचायो ने भक्तिमार्ग पाया तिलक ने कर्मयोग पाया अरविन्द ने ज्ञान योग को पाया और गांधी जी ने अनासक्ति और अंहिसा का संन्देश। कुछ लोग संसार से विमुख होकर एकान्त में ज्ञान की उपासना करन्त ही सिधि मानने लगे थे तभी गीता को कहना पडा।

सन्यासः कर्मयोगश्च निःश्रेयस्करावुभौ।

तमोस्तु कर्मसंन्यासात् कर्मयोगो विशिष्यते ।।[2]।।

(गीता)

संन्यास और कर्मयोग दोनो ही कल्याणकारी हैं किन्तु कर्मयोग श्रेष्ठतर है।

"कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन ।।[3]।।

जो लोग किसी फल की इच्छा से कर्म करते रहते है। वे जीने की कला नहीं जानते क्योंकि यदि उन्हें फल नहीं मिलता है। तो वे कुंठित हो जाते हैं और जीवन संग्राम से विरत हो जाते है। सही दृष्टिकोण यह है कि बिना फल की इच्दा से काम में लगे रहना चाहिए। सामान्य नागरिक को गीता व जहां कर्मठता की शिक्षा देती है। वहां बुद्धिजीवियों को वह सम्पूर्ण भारतीय दार्शनिक चिन्तन का सार बताती हुए तत्व चिन्तन और ज्ञान समुद्र के अवगाहन को सन्देश भी देती है।

वासांसि जीर्णानि यथा विहाय नवानि

गृहणाति नरोऽपराणि।

तथा शरीराणि विहाय जीर्णान्यन्यानि

संयाति नवानि देही। ।।[4]।।

भारतीय दर्शन की एक उपलब्धि है– आत्मा के अविनाशी, शाश्वत यऔर नित्य होने तथा शरीर के नश्वर और क्षण–भगुंर होने का सिद्धान्त । गीता ने इस सिद्धान्त को बहुत सरल शब्दों में समझाया हैं शरीर बदलता रहता है, आत्मा अमर रहती हैं जैसे हम पुराना कपडा छोडकर नया कपडा बदलते हैं वैसे ही एक शरीर छोडकर आत्मा दूसरा शरीर धारण करता है।

अनुद्वेगकरं वाक्यं सत्यं प्रियं हितं च यत् ।

स्वाध्यायाभ्यसनं चैव वाऽमयं तप उच्यते ।।[5]।।

(गीता)

दैनिक जीवन के व्यवहार के भी ऐसे अनेक अमूल्य उपदेश गीता में है। जो सम्यक जीवन की शाश्वत प्रेरणा दे सकते है।

यहाँ तक की किस प्रकार का अन्न खाना चाहिए। किस प्रकार के भोजन से कैसी बुद्धि उपजती है। लोगों से व्यवहार करते समय कैसी भाषा बोलनी चाहिए । यह सब भी सरल शब्दों में बतलाया गया है। केवल पहाड की गुफा में बैठकर ही तपस्या नही ंकी जाती बल्कि जीवन में तन मन और वाणी से भी तपस्या की जाती है। किसी को पीडा न पहुॅचे इसका ध्यान रखते हुए सत्य और प्रिय वाणी बोलना वाणी का तप बतलाया गया है।

मनः प्रसादः सौम्यत्व मौनमात्मविनिग्रहः।

भावसंशुद्धिरित्येत्तपो मानसमुच्यते ।।[6]।।

(गीता)

मन मे ंसदा शान्ति और सफाई रखना कम बोलना और किसी के प्रति दुर्भाव न रखना मानस तप बतलाया गया है।

गीता चाहे ईसा से तीस शताब्दियों पहले लिखी गयी हो या पॉच सो वर्ष पूर्व इसमें कुछ ऐसे मौलिक जीवन मूल्य निहित हैं जिनसे आज भी हम और मै। ही नही विश्व का कोई भी सामाज उसी प्रकार प्रेरणा ले सकत है। जिस प्रकार वर्षो पहले ली जाती होगी।

गीता के ज्ञान मार्ग और भक्ति मार्ग की अपेक्षा कर्ममार्ग का सिद्धान्त अधिक व्यावहारिक हैं गीता से पहले वेदों के कर्मकाण्ड में कर्म का अर्थ या अनुष्ठान यऔर बाद में पूजा समझा जाता था कुछ परवर्ती सम्प्रदायों ने कर्म का अर्थ यज्ञ अनुष्ठान् और बाद में पूजा समझा जाता था कुछ परवर्ती सम्प्रदायों ने कर्म का अर्थ लगाया व्रत अनुष्ठान, सदाचार, तपस्या और ध्यान ।

कर्म की इन व्याख्याओं ने भारतीय समाज की कर्मठता को पूर्णतः शिथिल कर दिया था। यह भी माना गया था कि बिना संन्यास के मुक्ति नहीं हो सकती। गृहस्थो को उपदेश दिये जाने लगे कि सांसारिक, कर्म पाप के साधन है। व बन्धन पैदा करते है। मोक्ष प्राप्त करने के लिए कर्म सन्यास आवश्यक है। इसका परिमाण यह हुआ है कि लोग कर्म से विमुख होने लगे, साधु सन्यासियों की संख्या बढ़ने लगी समाज में फैल रही इस अकर्मण्यता का निवारण गीता के कर्मयोग के सिद्धान्त ने किया । कर्म का वास्तविक अर्थ लोगों ने समझा । कर्मबन्ध से मुक्ति का क्या तात्पर्य है। यह स्पष्ट हुआ । गीता स्पष्ट घोषणा करती है। कि –

न कर्मणामनारंभान्नैष्कर्म्यं पुरुषोऽश्नुते ।

न च संन्यसनादेव सिद्धि समधिगच्छति ।।[7]।।

न हि कश्चित्क्षणमपि जातु विष्ठत्यकर्मकृत।

कार्यते ह्यवशः कर्म सर्वः प्रकृतिजैर्गुणैः ।।[8]।।

यस्त्विन्द्रियाणि मनसा नियम्यारभतेर्जुनः ।

कर्मेन्द्रियैः कर्मयोगमसक्तः स विशिष्यते ।।[9]।।

कर्मबन्धन से मुक्ति प्राप्त करने का उपाय नहीं है। कि कर्म ही न किया जाये । संन्यास लेने से ही सिद्धि होती हो ऐसी बात भी नही है। कर्म का त्याग तो चाहकर भी नही किया जा सकता। प्रकृति का सनातन नियम है कि कोई कमी बिना कर्म किये रह ही नही सकता। बरबस कर्म तो करना ही पडता हैं कर्म से मुक्ति प्राप्त करने का अर्थ है। कर्म के फल की कामना पर विजय पाना। यही कर्मयोग है इन्द्रियों पर और लालसा पर विजय प्राप्त करके जो निरन्तर कर्म करता है वहीं कर्मयोगी है। – वह कर्मबन्धन में लिप्त नहीं होता है।

व्यावहारिक क्षेत्र में सामाजिक मार्यादा और आदर्शा को बनाये रखने में प्रत्येक वर्ग का क्या कर्तव्य है। इस पर भी गीता में बडा मार्मिक विवेचन उपलब्ध है। निवृति मार्ग और सन्यास को महत्व देने वाले धर्मग्रन्थो ने वहां लोकिक मर्यादा और सामाजिक आदर्शो को उपेक्षित कर केवल व्यक्तिनिष्ठ अध्यात्म का उपदेश किया है। वहॉ गीता ने समाज व्यवस्था को सुचारू रूप से चलाने के लिए लोकनायको के कर्तव्य बडे सुन्दर ढंग से बतलाये हैं लोकसंग्रह अर्थात समाज व्यवस्था को परिचालित करने के लिए निर्धारित लौकिक कर्तव्यों को गीता ने बहुत महत्व किया है। लोकनायको का कर्तव्य यह बतलाया हैं कि व स्वार्थ और आसक्ति का त्याग करके लोक मर्यादा की स्थापना हेतु एक आदर्श सामने रखने के लिए कर्म करें।

सन्दर्भ सूची :–

श्रीमदभगवगीता

1. सर्वोपनिषद गावों..... अध्याय 8, श्लोक 27
2. सन्यासःकर्मयोगश्च..... अध्याय –5, श्लोक 2
3. कर्मण्येवाधिकारस्ते..... अध्याय –2, श्लोक 47
4. वासांसि जीर्णानिमया ..... अध्याय –2, श्लोक 22
5. अनुदष्वेगर..... अध्याय –17, श्लोक 15
6. मनः प्रसादः..... अध्याय –17, श्लोक 16
7. न कर्मणामनार..... अध्याय –3, श्लोक 4
8. न हि कश्चित्क्षणमंदि..... अध्याय –3, श्लोक 5
9. यस्त्विन्द्रियाणि मनसा..... अध्याय –3, श्लोक 7